मॉरीशस की स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा हिंदी का शिक्षण

डॉ. उदयनारायण गंगू, ओ.एस.के, आर्य रत्न

मॉरीशस में हिंदी के शिक्षण में अनेक स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान रहा है। विस्तार-भय के कारण इस लेख में केवल कुछेक प्रमुख संस्थाओं का ही विशेष उल्लेख कर रहे हैं, जैसे -- 'सनातन धर्म मंदिर परिषद', 'आर्य सभा', 'हिंदी प्रचारिणी सभा', 'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा', 'गहलोत राजपूत महासभा' जनांदोलन आदि। चूँकि आर्य समाज मॉरीशस अन्य संस्थाओं की अपेक्षा अधिक प्राचीन स्वैच्छिक संस्था है, इसलिए हिंदी-शिक्षण कार्य में उसके योगदान का रेखांकन विशेष रूप से करने का यत्न किया जाएगा।

भारतीय आप्रवासी और हिंदी

प्रश्न उठता है कि हिंदी-शिक्षण-कार्य कब और कैसे शुरू हुआ। यह सर्वविदित है कि भारतीय मूल के लोग जब यहाँ आकर बस गए, तब यह देश 'लघु भारत' कहलाने लगा। सन् 1834 से शर्तबन्द भारतीय मज़दूरों का मॉरीशस में आगमन आरंभ हुआ। आप्रवासन-काल सन् 1915 तक जारी रहा। मॉरीशस आने वाले श्रमिक आर्थिक दृष्टि से दरिद्र अवश्य थे, पर इस देश में खाली हाथ आते न थे। अपने साथ अपनी भाषाएँ, अपना धर्म, अपनी संस्कृति, अपनी जीवन-पद्धति लिए आते थे। सबसे बड़ी संख्या में श्रमिक पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन स्थानों से थे, जहाँ भोजपुरी बोली जाती थी।

भारतीय आप्रवासी दिन भर की जानलेवा मेहनत के बाद रात्रि-काल में फूस के बने झोंपड़ों में धार्मिक चर्चा के लिए एकत्र होते थे। ये झोंपड़े 'बैठका' कहलाते थे। यही बैठका उन श्रमिकों का सांस्कृति केन्द्र था, जहाँ कुछ समय बैठकर 'रामचरितमानस' पर सत्संग किया करते थे। रामचरितमानस की चौपाइयों के अर्थ को भोजपुरी में ही समझाया जाता था। यही भोजपुरी आगे चलकर हिंदी की नींव बनी। परिणाम स्वरूप कुछेक कमपढ़ जनों ने हिंदी-शिक्षण का बीजारोपण किया।

हिंदी पाठशालाएँ

कालान्तर में बैठकाओं की गतिविधियों में, हिंदी को प्राथमिकता दी गई और प्रतिदिन रात के समय एक घण्टा इस काम के लिए दिया जाने लगा। यह हिंदी शिक्षण प्राथमिक स्तर पर होता था और इसके विद्यार्थियों में बच्चों के साथ वयस्क भी होते थे। कई बार तो बाप और बेटा दोनों एक ही कक्षा में साथ बैठकर पढ़ते थे।

बैठकाओं में वर्णमाला आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थी अपनी पाटी पर एक सूक्ति लिखते थे, यथा- **'रामागतिदेहुसुमति'**। इस सूक्ति के द्वारा वे भगवान राम से अच्छी बुद्धि की प्रार्थना करते थे, ताकि पढ़ाई में प्रगति कर सकें।

बैठकाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों को न हिंदी व्याकरण का ज्ञान था और ना ही शिक्षण-विधि का। वर्णों की रटाई द्वारा पढ़ाई होती थी। छात्र बारहखड़ी को रटने के बाद शब्द-निर्माण करना सीखते थे।

आप्रवासन के आरम्भिक वर्षों में एस्टेट मालिकों ने भारतीय मज़दूरों के साथ दास जैसा व्यवहार किया। सन् 1835 से 1865 तक का समय उनके लिए बड़ा ही कष्टमय था। इस सम्बन्ध में मॉरीशस के प्रसिद्ध विद्वान श्री जयनारायण रॉय लिखते हैं – *"तीस वर्षों का यह समय, जिसमें आप्रवासियों को अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी भाषा की बढ़ोतरी के लिए भगीरथ प्रयत्न करने पड़े, अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ था।"*[1] भारतवंशियों के मॉरीशस-आगमन से पूर्व यहाँ की दो प्रमुख भाषाएँ -- अंग्रेज़ी और फ्रेंच थीं। ईसाई धर्म प्रचलित था। दास-प्रथा के अन्तर्गत आए हुए अफ़्रीकी मूल के लोग तत्कालीन शासकों के धर्म के अनुयायी बन गए थे। चूँकि भारतीय श्रमिक अपने देवी-देवताओं को साथ ले आए थे, इसलिए अपने हिंदू धर्म को त्यागना पाप समझते थे।

रॉय जी लिखते हैं – *"एस्टेट मालिक और उनकी सरकार दोनों ही भारतीय आप्रवासियों के धार्मिक उत्साह, भारतीय समाज के दृढ़ीकरण के प्रयत्न और खास तौर पर हर एस्टेट में शुरू किए गए सायंकालीन हिंदी स्कूलों से ज़रा भी खुश नहीं थे। उन्हें यह जानने की बड़ी उत्सुकता थी कि गीता और रामायण में क्या है और हिंदी स्कूलों में पढ़कर अपनी परंपराओं को बनाए खने के लिए भारतीय इतने व्यग्र क्यों हैं! .... जब उन्होंने विद्यार्थियों को अपने बड़ों के साथ हिंदी स्कूलों में पढ़ते देखा तो आतंकित हो गए और स्कूलों पर दबाव डालने लगे।"* [2]

भारतीय आप्रवासियों के हृदय में अपना धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी भाषा बसी हुई थी। उन्हें ईसाई बनाने में ईसाई पादरियों ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। बैठकों में पढ़ाने वाले समर्पित सेवकों ने उनकी रक्षा की।

सनातन धर्मियों द्वारा हिंदी-शिक्षण में योगदान

भारतीय आप्रवासन के आरम्भिक दशकों में पठन-पाठन-कार्य हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा होता था। श्री जयनारायण रॉय जी लिखते हैं – *"कुछ बरसों तक हर शाम घण्टे दो घण्टे बैठकर न मिटने वाली स्याही में सरकण्डे की कलम बोर-बोर कर पूरी रामायण नकल करते और यों धर्म के प्रति अपने*

उत्साह को अभिव्यक्त किया करते थे। बहुत से लोग जो भी किताब हाथ लग जाती, उसी की नकल कर डालते थे, फिर वह कबीर, सूरदास या नानक के भजन, आल्हाखण्ड या सारंगधर की कहानी ही क्यों न हो।"[3]

कुछ ऐसे पुरोहित थे, जो हिंदी का अल्प ज्ञान रखते थे। वे अपने हिंदी-ज्ञान से भाषा और संस्कृति को धर्म-रक्षण प्रदान करते थे। इन श्रद्धालु पंडित-पुरोहितों ने अपने अल्प हिंदी ज्ञान के माध्यम से इस देश में सनातन धर्म की धारा प्रवाहित की। उन्होंने कई बैठक बनवाकर अपनी विधि से हिंदी का साधारण ज्ञान दिया।

डॉक्टर मुनीश्वरलाल चिंतामणि जी 'बैठका' की शिक्षण प्रणाली के बारे में लिखते हैं - पढ़ाई का आरंभ ईश-वंदना से होता था यथा -

सर-सर-सर-सर सनझाकारी।
सोने रूपे गिरवर धारी।।
जे जाने गिरवर के भेव।
नित उठ पूजे गनपत देव।।

बच्चों को अक्षर-ज्ञान बड़े विचित्र ढंग से कराया जाता था। जैसे -

पहिल - 'क'

दूसर - 'ख'

गुनिया - 'ग'

छता - 'छ'

जनेवा - 'ज'

पहनवा - 'प'

तीनकोनिया - 'य' आदि।

मात्रा का ज्ञान या बारह खड़ी का अभ्यास इस प्रकार कराया जाता था :-

क में कानून - का

क में हिरसिन - कि

क में दीरघिन - की

क में तारूकुन - कु

क में बार्जून - कू

क में एकले	- के
क में दोलै	- कै
क में कोर्मत	- को
क में दूजकनौ	- कौ
क में मांस्ते	- कं
क में दुबासी	- कः [4]

इस शिक्षण पद्धति में भोजपुरी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। बच्चों को स्वर-व्यंजन तथा मात्राएँ क्रम से रटाई जाती थी।

वे धीरे-धीरे शब्दों, फिर वाक्यों को पढ़ने में समर्थ होते थे। थोड़ी सी गिनती का ज्ञान भी कराया जाता था। डॉक्टर चिंतामणि जी आगे लिखते हैं -

"पहाड़े का अभ्यास इस क्रम से होता था :--

दू - इकाई	-- दू
दू - दुयाँ	-- चार
दू - तीयाँ	-- छौ
दू - चौके	-- आठ
दू - पाँचे	-- दस
दू - छके	-- बारह
दू - साते	-- चौदह
दू - आठे	-- सोलह
दू - नवे	-- अठारह
दू - दहाई	-- बीस

उन दिनों देवनागरी लिपि के साथ ही कैथी लिपि का प्रयोग होता था। 'बैठकाओं' में पाठ्य पुस्तकों के न होने के कारण तुलसीकृत रामायण और हनुमान चालीसा के अलावा ‘बालचित्र बोध’, ‘दानलीला’, ‘तोता-मैना’ आदि पुस्तकों का पठन-पाठन हुआ करता था। कहीं-कहीं ‘कुँवर विजयमल’, ‘आल्हा खंड’, ‘बीरबल विनोद’ से भी काम लिया जाता था।[5]

भारत से आए हुए पंडित गोविन्द त्रिवेदी और कई अन्य जनों ने हिंदी में प्रवचन करके अनेकों के हृदय में हिंदी के प्रति प्रेम पैदा किया। स्थानीय सनातनी हिंदी विद्वानों की सूची लंबी है। गत शती के कुछेक नाम चिरस्मरणीय हैं, जैसे श्री नरसी मुलुराम सामी, पंडित रामावध शर्मा, पंडित देवदत्त शर्मा, पंडित उमाशंकर गिरजानन्द आदि ।

ज्यों-ज्यों समय बढ़ता गया, त्यों-त्यों धर्म प्रेमियों का उत्साह भी बढ़ता गया। सनातन धर्मियों ने 'रामचरितमानस' और धर्म-प्रचार के लिए अपने देवालयों को माध्यम बनाया। कई दशकों के पश्चात 'मॉरीशस सनातन धर्म मंदिर परिषद्' की स्थापना हुई। वर्तमान में यह परिषद हिंदी के माध्यम से भावी पुरोहितों को प्रशिक्षण दे रही है। हिंदी में कथा-वार्ता कर रही है। इस प्रकार के कार्यों से हिंदी का अनौपचारिक शिक्षण होता रहा है ।

डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि द्वारा रेखांकित उपर्युक्त शिक्षण-विधि का प्रयोग अनेक स्वैच्छिक संस्थाओं में सन् 1940 तक होता रहा। इस विधि का पूर्णतः अन्त प्रोफ़ेसर वासुदेव विष्णुदयाल और भारत से आए प्रोफ़ेसर रामप्रकाश जी के हिंदी शिक्षण-क्षेत्र में उतरने से हुआ।

सन् 1949 में मॉरीशस सरकार के निमंत्रण पर प्रोफ़ेसर रामप्रकाश जी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के छात्राध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए मॉरीशस आए। वे महान शिक्षा शास्त्री थे। वे यहाँ तीन दशकों तक प्रशिक्षण महाविद्यालय में कार्य-रत रहे। छात्रध्यापकों ने उनसे शिक्षण विधि, कक्षाध्यापन और बाल मनोविज्ञान का प्रशिक्षण पाया। उनके द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक-अध्यापिकाएँ न केवल सरकारी स्कूलों में हिंदी पढ़ाते थे, प्रत्युत सायंकालीन एवं रविवारीय हिंदी पाठशालाओं में भी हिंदी पढ़ाने लगे। विद्यार्थी नई शिक्षण विधि के माध्यम से हिंदी का ज्ञान अर्जित करने लगे।

प्रोफ़ेसर विष्णुदयाल एवं प्रोफ़ेसर रामप्रकाश के शिक्षण-कार्य से पूर्व मॉरीशस में 'आर्य परोपकारिणी सभा', 'आर्य प्रतिनिधि सभा', 'गीता मण्डल', 'हिन्दू महासभा', 'तिलक विद्यालय', 'हिंदी प्रचारिणी सभा' आदि स्वैच्छिक संस्थाएँ हिंदी-शिक्षण-कार्य में संलग्न थीं। उपर्युक्त संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :-

गीता मण्डल

सन् 1920 में 'गीता मण्डल' की स्थापना हुई। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य गीता का प्रचार-प्रसार करना था। यह कार्य हिंदी के माध्यम से ही होता था। फलतः बहुतों को हिंदी पढ़ने की प्रेरणा मिली।

हिन्दू महा सभा

'हिन्दू महा सभा' की स्थापना सन् 1925 में हुई। इस संस्था ने 'गीता' और 'रामायण' से संबंधित परीक्षाएँ आरंभ कीं। इन ग्रन्थों को पढ़ने के लिए बहुत से लोग हिंदी पढ़ने लगे ।

तिलक विद्यालय

12 जून 1926 को मोंताईं लौंग ग्राम में 'तिलक विद्यालय' की स्थापना श्री गिरधारी भगत और रामलाल मंगर भगत जी के सहयोग से हुई। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य था - हिंदी का शिक्षण।

हिंदी प्रचारिणी सभा

'तिलक विद्यालय' में ही 24 दिसंबर 1935 को 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने जन्म लिया। इस संस्था ने अपने स्थापना-काल से अब तक मुख्यतः व्याकरण सम्मत और साहित्यिक हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। 'हिंदी प्रचारिणी सभा' द्वारा आरम्भिक काल में 'परिचय' और 'प्रथमा' परीक्षाएँ चालू की गईं। सन् 1960 के दशक में साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'मध्यमा' और 'उत्तमा' परीक्षाएँ प्रारम्भ हुई । मॉरीशस सरकार ने हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की सभी परीक्षाओं को मान्यता दी। इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए सैकड़ों लोग सरकारी हिंदी अध्यापक नियुक्त हुए।

आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा

'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा' की स्थापना 1930 में हुई। इसका पंजीकरण 1934 में हुआ। इस सभा के प्रमुख कार्य हैं - हिंदी के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करना, अपने केंद्रीय भवन में भावी पुरोहित-पुरोहिताओं को प्रशिक्षित करना, अपनी शाखाओं में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर हिंदी पढ़ाना आदि ।

इस सभा ने अपने कार्यों की पूर्ति के लिए कई समितियों को गठित किया है। 'हिंदी शिक्षा विभाग समिति' हिंदी शिक्षण-कार्य करती है। इस समय इस सभा की तीस शाखाओं में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। इन शाखाओं में पहली से छठी कक्षाओं की पढ़ाई के साथ-साथ 'प्रवेशिका', 'परिचय', 'प्रथमा', 'मध्यमा' और 'उत्तमा' परीक्षाओं की तैयारी करवायी जाती है। गत दस वर्षों में कोई पन्द्रह हज़ार विद्यार्थी प्राथमिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो चुके हैं और माध्यमिक परीक्षाओं में लगभग तीन हज़ार छात्र-छात्राएँ उत्तीर्ण हैं।

'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा' के 'धार्मिक प्रशिक्षण विभाग' द्वारा भावी पुरोहित-पुरोहिताओं को हिंदी के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाता है। छात्र पुरोहितों को तीन वर्षों तक वैदिक कर्मकाण्ड और वैदिक दर्शन की शिक्षा दी जाती है। उन्हें इस प्रशिक्षण द्वारा तीन परीक्षाओं - 'पुरोहित प्रबोध', 'पुरोहित रत्न' और 'पुरोहित निधि' में उत्तीर्ण होना पड़ता है। छात्र-पुरोहितों को सुयोग्य शिक्षक पढ़ाते हैं, जो भारत के गुरुकुल कांगड़ी से 'आचार्य' की उपाधि से विभूषित होकर आए हैं। इन आचार्यों ने गत

दस वर्षों में पाँच सौ पंडित-पंडिताओं को तैयार किया है। ये सभी 'आर्य रविवेद सभा' की विभिन्न शाखाओं में हिंदी के माध्यम से धर्म का प्रचार करते हैं ।

गहलोत राजपूत महा सभा

'गहलोत राजपूत महा सभा' की स्थापना 1964 में हुई। इसका मुख्य कार्यालय 'महाराना प्रताप गली' पोर्ट लुई में पाया जाता है। इस सभा का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करना है। इसके पंडित-प्रचारक हिंदी के माध्यम से ही प्रचार-प्रसार कार्य करते हैं। इस सभा की ओर से भावी पुरोहित-पुरोहिताओं को हिंदी के माध्यम से ही प्रशिक्षण दिया जाता है।

मानव सेवा निधि – Human Service Trust

इस स्वयंसेवी संस्था की ओर से समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता है। सभी कार्यक्रम हिंदी भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत किए जाते हैं। भजन और रामायण-गान द्वारा नई पीढ़ी को हिंदी सीखने की प्रेरणा दी जाती है। 'मानव सेवा निधि' कई वर्षों तक 'स्वदेश' नामक हिंदी पत्र निकालती रही। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस संस्था ने अपने विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी का अनौपचारिक शिक्षण करने में प्रशंसनीय कार्य किया है।

जनांदोलन द्वारा हिंदी शिक्षण

श्री वासुदेव विष्णुदयाल भारत जाने से पूर्व 'आर्य कुमार सभा' के सक्रिय सदस्य थे। सन् 1939 में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. की उपाधि से विभूषित होकर मॉरीशस लौटे। स्वदेश लौटते ही उन्होंने हिंदी के माध्यम से धर्म-प्रचार प्रारंभ कर दिया। उन्होंने अपने जनांदोलन के द्वारा 300 हिंदी पाठशालाएँ खोलीं। वे धर्म-प्रचार के अवसर पर स्त्री-पुरुषों से यह गाना गवाया करते – "पढ़ो हिंदू सभी हिंदी - अ, आ, इ, ई। यह ऋषियों की भाषा है - क, ख, ग, घ, ... ।"

पंडित विष्णुदयाल जी ने हिन्दुओं में राजनीतिक चेतना पैदा की। उनके द्वारा संचालित 'जनांदोलन' ने आर्य समाजियों और सनातनियों दोनों को ही हिंदी और हिंदू धर्म की ओर आकृष्ट किया।

अन्य संस्थाएँ

मॉरीशस में 'सम्मेलन सभा', 'सावान संगीत संघ', 'हिंदी एक्सटेंशन यूनिट आदि कई स्वैच्छिक संस्थाओं ने भी प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर हिंदी का शिक्षण किया है।

सत्यार्थप्रकाश और हिंदी

मॉरीशस में खड़ी बोली हिंदी का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार करने वाली सबसे प्रबल संस्था 'आर्य सभा' है। यह सभा सन् 1960 में अस्तित्व में आई। यह 'आर्य प्रतिनिधि सभा' एवं 'आर्य परोपकारिणी

सभा' की कोख से जन्मी है। 'आर्य प्रतिनिधि सभा' के जनक महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' है। यह ग्रंथ मॉरीशस कैसे पहुँचा? यह घटना बड़ी ऐतिहासिक है।

सन् 1898 में ब्रिटिश सेना में सिपाही के रूप में बंगाल रेजिमेंट से कुछ बंगाली सिपाही मॉरीशस आए। उनमें एक का नाम भोलानाथ तिवारी था। वे महर्षि दयानन्द के कालजयी ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' साथ ले आए थे। सन् 1902 में भारत लौटते समय वे अपने ग्वाले, भिखारीसिंह जी को वह पुस्तक दे गए। भिखारीसिंह ने पुस्तक खेमलाल लाला नामक व्यक्ति को दे दी। खेमलाल लाला 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़कर अत्यन्त प्रभावित हुए। फलतः उन्होंने सन् 1903 में अपने दो साथियों - गुरुप्रसाद दलजीतलाल और जगमोहन गोपाल के सहयोग से 'क्यूर्पिप' में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की। 'सत्यार्थप्रकाश' पर साप्ताहिक सत्संग शुरू हुआ। अब तक भारतीय आप्रवासी केवल सूर, तुलसी और कबीर की रचनाओं पर ही सत्संग किया करते थे। 'सत्यार्थप्रकाश' वह प्रथम ग्रंथ था, जिसने मॉरीशस में खड़ी बोली की नींव डाली। इस देश में पहले पहल 'सत्यार्थप्रकाश' के माध्यम से ही लोगों ने खड़ी बोली हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया। आर्य समाज ने खड़ी बोली हिंदी को 'आर्य भाषा' नाम से अभिहित किया तथा इसके प्रचार-प्रसार में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।

मॉरीशस की राजधानी - पोर्ट लुई में आर्य समाज की स्थापना

सन् 1909 के राजकीय आयोग के सामने भारत से आए हुए हिंदुओं के त्राता बारिस्टर मणिलाल मगनलाल डॉक्टर ने सरकार द्वारा हिंदी पढ़ाने के पक्ष में बयान दिया था, जो स्वीकृत नहीं हुआ था।

सन् 1911 के अन्त में मणिलाल मॉरीशस से रवाना हुए। जाने से पहले उन्होंने 8 मई 1911 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में आर्य समाज की स्थापना करने में श्री खेमलाल लाला और उनके साथियों को अपना पूरा सहयोग दिया। सन् 1911 से आजतक आर्य समाज ने हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया है। मणिलाल डॉक्टर ने जिस प्रेस में हिन्दुस्तानी पत्र निकाला था, वह प्रेस भी पोर्ट लुई आर्य समाज को दे दिया। साथ ही रंगून से एक प्रकाण्ड वैदिक विद्वान, डॉक्टर चिरंजीव भारद्वाज को मॉरीशस में कार्य करने के लिए बुलाया।

आर्य समाज के पूर्वार्द्ध काल का शिक्षण-कार्य

मॉरीशसीय आर्य समाज की आयु इस समय एक सौ बारह वर्षों की है। इस संस्था द्वारा किए गए हिंदी-शिक्षण-कार्य को दो काल-खण्डों में देखा जा सकता है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। प्रथम, 1950 से पूर्व का शिक्षण-कार्य और दूसरा सन् 1950 के पश्चात का कार्य।

पूर्वार्द्ध में कई भारतीय वैदिक प्रचारक मॉरीशस आए और अनेक मॉरीशसीय युवक भारत पढ़ने गए।

डॉक्टर भारद्वाज जी 15 दिसंबर 1911 में अपनी पत्नी सुमंगली देवी और दो पुत्रों के साथ यहाँ आए। वे लगभग तीन वर्षों तक मॉरीशस में कार्य करते रहे। वे योग्य चिकित्सक थे। उन्होंने जीविका के लिए चिकित्सा का सहारा लिया। यहाँ आते ही आर्य समाज आन्दोलन में पिल पड़े। सन् 1913 में उन्होंने आर्य समाज का पंजीकरण करवाया और नया नाम रखा गया - 'आर्य परोपकारिणी सभा'। उन्होंने नारी शिक्षा एवं जागृति, हिंदी प्रचार और सुधारवादी आन्दोलन चलाए। उन्हें रुढ़िवादियों द्वारा विरोध का सामना करना पड़ा, पर अविचल डॉक्टर भारद्वाज अपनी पत्नी सुमंगली देवी के साथ डटकर काम करते रहे। सुमंगली देवी प्रथम भारतीय महिला थीं, जो इस देश में सार्वजनिक सभाओं में हिंदी में भाषण देती थीं। उन्होंने स्त्रियों और लड़कियों की शिक्षा के लिए अनेक कन्या-पाठशालाएँ खोलीं। कन्या-शिक्षा के विरोधी लोग कुछेक पाठशालाओं में आग लगा देते थे।

सन् 1914 में डॉक्टर भारद्वाज ने मॉरीशस से प्रस्थान किया। जाने से पहले उन्होंने इस देश में जागरण लाने के लिए पंजाब से एक तेजस्वी संन्यासी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को मॉरीशस आने के लिए निमंत्रित किया ।

पंडित आत्माराम विश्वनाथ और स्वामी स्वतन्त्रानन्द

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के आगमन से पूर्व 1912 में पंडित आत्माराम विश्वनाथ जी मॉरीशस आ चुके थे। वे हिंदी के अच्छे लेखक थे। उन्होंने कई हिंदी पत्रों का संपादन किया और हिंदी में अनेक पुस्तकें लिखीं। वे हिंदी के माध्यम से आर्य समाज के मंच से हिंदी प्रचार-कार्य में लम्बे समय तक रत रहे। बहुतों ने उनसे हिंदी सीखने की प्रेरणा पाई। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी हिंदी-संस्कृत के धुरन्धर विद्वान थे। उन्होंने इस देश में व्याप्त अन्ध परंपरा और अविद्या पर काफ़ी प्रहार किया। अनेक गाँवों में पैदल पहुँचकर हिंदी पाठशालाएँ खोलीं। उन्होंने दो वर्ष यहाँ रहकर सैकड़ों व्यक्तियों को हिंदी की ओर उन्मुख किया।

पंडित काशीनाथ के कार्य

सन् 1911 में भारत लौटते समय मणिलाल डॉक्टर दो मॉरीशसीय युवकों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने साथ ले गए थे। एक थे काशीनाथ किष्टो और दूसरे रामखेलावन बुधन। काशीनाथ किष्टो डी.ए.वी. कॉलिज में पढ़कर 1916 में मॉरीशस लौटे। वे कुशल शिक्षक, उपदेशक, लेखक, संपादक और समीक्षक थे। उनके सहयोग से सन् 1818 में वाक्वा में 'आर्यन वैदिक स्कूल' खोला गया।

उन्होंने अपनी पत्नी के साथ इस स्कूल में पढ़ाना आरम्भ किया। बच्चों को पढ़ाने के लिए 'शिशु बोध' नामक तीन पुस्तकें लिखीं। उनके शिष्यों में श्री मोहनलाल मोहित, पंडित रामरतन, श्री नन्दलाल आदि कर्मठ समाज सेवक और हिंदी प्रचारक बने।

पंडित काशीनाथ जी ने लेखन संपादन, गायन और जोशीले प्रवचनों के माध्यम से हिंदी का खूब प्रचार किया। वे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने हिंदी पढ़ाने के लिए बहुतों को प्रशिक्षण दिया।

पंडित वेणिमाधव सतीराम

युवक वेणिमाधव भारत से पढ़कर 1925 में लौटे। वे हिंदी-संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। बड़े कुशल वक्ता थे। उन्होंने हिंदी-शिक्षण-कार्य में स्तुत्य प्रयास किया। बहुत से आर्य समाजी पंडितों को हिंदी-संस्कृत का अच्छा ज्ञान दिया। दीर्घकाल तक पुरोहित-प्रशिक्षण-कार्य करते रहे और प्रति सप्ताह 'वैदिक वाणी' कार्यक्रम में ज्ञानवर्धक संदेश रेडियो पर प्रसारित करते रहे। हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

श्री मोहनलाल मोहित जी का हिंदी-शिक्षण में योगदान

मोहनलाल मोहित जी आर्य समाज के भीष्म पितामह थे। उन्होंने दीर्घकाल तक आर्य समाज का हिंदी के माध्यम से नेतृत्व किया।

मोहित जी ने बचपन में कैथी लिपि द्वारा पढ़ाई शुरू की थी। पंडित काशीनाथ के संपर्क में आकर देवनागरी के माध्यम से हिंदी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

वे किशोरावस्था से ही अपने निवास स्थान के आसपास के गाँवों में रहने वाले युवकों को हिंदी पढ़ाने लगे। उन्होंने 'आर्योदय' पत्र का लम्बे समय तक संपादन किया। न केवल शिक्षण द्वारा, वरन् लेखन द्वारा भी सबको हिंदी सीखने की प्रेरणा देते रहे।

1925 तक आते-आते आर्यसमाज की पचहत्तर शाखाएँ खुल चुकी थीं। सभी शाखाओं में हिंदी की पढ़ाई हो रही थी। हिंदी पाठशालाओं के संचालन के लिए वार्षिकोत्सवों का आयोजन होने लगा । उन अवसरों पर आर्थिक दान के लिए अपील की जाती। लोग यथाशक्ति दान देते। इस प्रकार के आयोजनों से भोजपुरी बोली के मुकाबले हिंदी का प्रचार बढ़ा और वह अधिकाधिक लोकप्रिय होती गई।

आर्य समाजियों के हिंदी-प्रेम को रेखांकित करते हुए श्री जयनारायण रॉय जी लिखते हैं – *“सनातन धर्म का प्रचार करने वाले पंडित-पुरोहित केवल पूजा-पाठ और व्रत अनुष्ठान के अवसर पर ही उपदेश देते थे। इसके विपरीत आर्य समाजी पंडित चाहे त्योहार हो या शादी, मृत्यु-जागरण हो या कोई*

सामाजिक उत्सव सभी का उपयोग उपदेश देने के लिए करने लगे। इससे हिंदी के प्रचार-प्रसार को बड़ा बल मिला। आर्य समाजी कौन है, इसका फौरन पता चल जाता था, क्योंकि वे हमेशा हिंदी बोलने का आग्रह करते थे। उनकी देखा-देखी और आग्रह पर दूसरे भी हिंदी बोलते और इस तरह अधिकाधिक लोगों को हिंदी बोलने की आदत होती गई।"[6]

जैमिनी मेहता और स्वामी विज्ञानानन्द

सन् 1925 में मेहता जैमिनी जी और 1926 में स्वामी विज्ञानानन्द जी मॉरीशस आए। मेहता जैमिनी जी बड़े कुशल वक्ता थे। उन्होंने यहाँ 'आर्य कुमार सभा' की स्थापना की तथा युवकों को हिंदी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्हीं की प्रेरणा से 1933 में वासुदेव विष्णुदयाल लाहौर के डी.ए.वी. कॉलिज में पढ़ने गए और छः वर्ष बाद हिंदी और अंग्रेज़ी के योग्य विद्वान बनकर मॉरीशस लौटे।

जैमिनी मेहता जी और स्वामी विज्ञानानन्द ने अपने व्याख्यानों द्वारा मॉरीशस की नई पढ़ी को हिंदी की ओर आकृष्ट किया ।

प्रवासी भारतीयों की आगमन-शती एवं जन-जागरण

सन् 1935 में 'आर्य परोपकारिणी सभा' ने प्रवासी भारतीयों के मॉरीशस आगमन की शताब्दी का आयोजन किया। इस शताब्दी-समारोह में विद्वानों के हिंदी भाषणों को सुनकर श्रोता बड़े प्रभावित हुए। परिणाम स्वरूप माता-पिताओं ने अपने बच्चों को हिंदी सीखने के लिए हिंदी पाठशालाओं में बड़ी संख्या में भेजना शुरू किया।

आर्य समाज के उत्तरार्द्ध काल में किए गए शिक्षण-कार्य

सन् 1950 से आज तक बीसियों भारतीय धर्मोपदेशक मॉरीशस आए और दर्जनों युवक-युवतियाँ हिंदी का उच्च ज्ञान प्राप्त करने भारत गए। 1950 से आज तक आए हुए कुछ हिंदी विशेषज्ञों के नाम इस प्रकार हैं – स्वामी नारायणानन्द, महात्मा आनन्द भिक्षु, स्वामी ध्रुवानन्द, स्वामी अभेदानन्द, स्वामी अखिलानन्द, पंडित कृष्ण शर्मा, महात्मा आनन्द स्वामी, आचार्य वैद्यनाथ, आचार्य कृष्ण, आचार्य वेदपाल, स्वामी विद्यानन्द विदेह, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सत्यम्, डॉक्टर उषा शर्मा आदि। इन सभी धर्म-प्रचारकों ने हिंदी में धुआँधार भाषण देकर हज़ारों लोगों को हिंदी सुनने, समझने और सीखने की प्रेरणा दी। ये विद्वान रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से भी संदेश देते रहे। स्थानीय पंडित-पुरोहित भारतीय विद्वानों से प्रभावित होते रहे और उन्हीं के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए हिंदी का प्रचार-प्रसार डटकर करते रहे। साथ ही आर्य सभा के मुखपत्र – 'आर्योदय' पर लेख लिखकर हिंदी

वातावरण का निर्माण करते रहे। वे अपने प्रभावशाली उपदेशों द्वारा हिंदी का अनौपचारिक शिक्षण करते रहे हैं।

सन् 1960 से पहले आर्यसमाज के मन्तव्यों का प्रचार-प्रसार करने वाली दो सभाएँ थीं – 'आर्य परोपकारिणी सभा' और 'आर्य प्रतिनिधि सभा'। सन् 1960 में दोनों सभाओं का 'आर्य सभा' में विलय हो गया। आर्य सभा ने हिंदी के विशेष शिक्षण के लिए कुछ नए कदम उठाए। अनेक समितियाँ गठित करके हिंदी को चार स्तरों पर पढ़ाना शुरू किया, यथा – (1) पूर्वप्राथमिक स्तर, (2) प्राथमिक स्तर, (3) माध्यमिक स्तर और (4) विश्वविद्यालयीय स्तर।

पूर्व प्राथमिक पाठशाला समिति

आर्य सभा की पूर्व प्राथमिक पाठशाला समिति द्वारा शिशुओं की पढ़ाई की व्यवस्था की जाती है। पूर्व प्राथमिक पाठशाला के छात्र-छात्राओं को अन्य विषयों के साथ हिंदी का भी ज्ञान दिया जाता है। हिंदी-शिक्षण के लिए विशेष प्रशिक्षित अध्यापक-अध्यापिकओं द्वारा काम लिया जाता है। पाठ्य समग्री तैयार करना, हिंदी में बाल गीतों को गवाना, पशु-पक्षियों एवं आस-पास की वस्तुओं के हिंदी में नाम बताना, हिंदी में ईश-प्रार्थना सिखाना आदि पूर्व प्राथमिक शिक्षण-कार्य के अंतर्गत होता है। इस समय आर्य सभा द्वारा चौदह पूर्व प्राथमिक पाठशालाएँ चल रही हैं। इन पाठशालाओं की देख-रेख के लिए कुछ निरीक्षक नियुक्त किए जाते हैं। हज़ारों बच्चे अपनी योग्यतानुसार हिंदी शब्दों को सीखकर सरकारी प्राथमिक पाठशालाओं में भरती होते हैं।

विद्या समिति

सन् 1950 से आज तक आर्य सभा द्वारा गठित 'विद्या समिति' सायंकालीन और रविवारीय पाठशालाओं में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की पढ़ाई की व्यवस्था करती रही है।

इस समय आर्य समाज के मन्दिरों में एक सौ बहत्तर हिंदी पाठशालाओं में लगभग 300 अध्यापक-अध्यापिकाएँ पढ़ा रहे हैं। दो प्रकार के अध्यापक-अध्यापिकाएँ छात्रों को पढ़ाते रहे हैं। एक वे हैं, जिन्होंने प्रोफ़ेसर रामप्रकाश द्वारा अध्यापन-विधि सीखी है और दूसरे, वे अध्यापक हैं, जिन्हें 'विद्या समिति' ने कार्यशालाओं का आयोजन करके प्रशिक्षित किया है।

प्रशिक्षण के अतिरिक्त विद्या समिति पाठ्य पुस्तकों का निर्माण भी करती है। साथ ही पहली से छठी कक्षा की परीक्षाओं का आयोजन करती है। ज़िले के स्तर पर विद्या दिवस मनाती है तथा शिक्षण-कार्य की देख-रेख के लिए निरीक्षकों को नियुक्त करती है।

उन्नीसवीं सदी के पाँचवें दशक में 'भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद्' अजमेर की परीक्षाओं -- 'विद्या विनोद', 'विद्यारत्न', 'विद्या विशारद' और 'विद्या वाचस्पति' की पढ़ाई शुरू की गई, जो सन् 2000 तक होती रही। इन परीक्षाओं में धर्म, दर्शन, साहित्य, सामान्य ज्ञान आदि विषयों का समावेश था। सभी प्रश्नों का हल हिंदी के माध्यम से करना पड़ता था। प्रोफ़ेसर रामप्रकाश द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक पचास वर्षों तक इन परीक्षाओं की तैयारी के लिए विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों को पढ़ाते रहे। अनगिनत छात्र-छात्राओं ने इन परीक्षाओं के माध्यम से हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया।

सन् 1950 से सन् 2000 तक हज़ारों छात्र-छात्राओं ने 'भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद्' की 'विद्या वाचस्पति' परीक्षा में सफलता प्राप्त की है।

पिछले कुछ वर्षों से विद्या समिति ने छठी कक्षा में उत्तीर्ण छात्रों के लिए दो नई परीक्षाएँ – 'सिद्धान्त प्रवेश' और 'सिद्धान्त रत्न' नाम से चलाई है। अब तक काफ़ी छात्रों ने इन परीक्षाओं में भाग लेकर सफलता प्राप्त की है।

आर्यन वैदिक स्कूलों में हिंदी-शिक्षण

आर्य सभा द्वारा दो 'आर्यन वैदिक स्कूलों' का संचालन होता है, जिनमें सरकार द्वारा प्रशिक्षित शिक्षक-शिक्षिकाएँ पढ़ाते हैं। एक स्कूल लावाँचुर ग्राम में है, जिसमें सभी बच्चे हिंदी पढ़ते हैं। दूसरा स्कूल वाक्वा में है, जिसमें हिंदू बच्चों के साथ गैर हिंदू बच्चे भी हैं। सभी हिंदू बच्चे हिंदी पढ़ते हैं।

डी.ए.वी. कॉलिज में हिंदी

आर्य सभा द्वारा दो डी.ए.वी. कॉलिजों का संचालन होता है – एक पोर्ट लुई में, जो पचास वर्षों से शिक्षण-कार्य कर रहा है और दूसरा मोरसेलमाँ-सेंट-आँद्रे गाँव में, जो सन् 2004 से शिक्षण-कार्य में रत है। दोनों कॉलिजों में दो हज़ार बच्चे 'फ़ॉर्म एक' से एच.एस.सी. तक पढ़ते हैं। सभी हिंदू विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से 'फ़ॉर्म तीन' तक हिंदी पढ़नी पड़ती है। बहुत से छात्र 'कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय' की 'स्कूल सर्टिफ़िकेट' और 'हायर स्कूल सर्टिफ़िकेट' तथा 'लंदन यूनिवर्सिटी' की जी.सी.ई. 'ऑर्डिनरी' और 'एडवांस लेवल' की परीक्षाएँ भी कई दशकों से देते आ रहे हैं। पिछले पचास वर्षों में पोर्ट लुई के डी.ए.वी. कॉलिज से अनगिनत बच्चे हिंदी सीखकर निकले हैं।

आर्य सभा अपने विद्यालयों में पूर्वप्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक पढ़ाई के अतिरिक्त स्नातक स्तर का भी शिक्षण करती रही है। 'भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद्' अजमेर द्वारा संचालित 'विद्या वाचस्पति' तथा 'सर्वानन्द विद्यापीठ दयानन्दमठ, पंजाब' द्वारा संचालित 'सिद्धान्त शास्त्री' की पढ़ाई कई वर्षों तक करती रही। ये दोनों परीक्षाएँ बी.ए. के समकक्ष हैं।

'हिंदी प्रचारिणी सभा' सन् 1960 के दशक से 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग द्वारा संचालित 'उत्तमा' परीक्षा की पढ़ाई व्यवस्थित ढंग से करती आई है। आर्य सभा ने 'उत्तमा' परीक्षा के लिए बीते वर्षों में हज़ारों छात्र-छात्राओं को पढ़ाया।

1970 के दशक में 'उत्तमा' उपाधि से विभूषित विद्यार्थियों को बनारस तथा भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में एम.ए. के लिए प्रवेश मिलता था। 'उत्तमा' परीक्षा को बी.ए. का दर्जा दिया जाता था।

डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज द्वारा तृतीयक स्तर का शिक्षण

आर्य सभा विश्वविद्यालीय स्तर पर हिंदी का शिक्षण करने वाली मात्र एक ही स्वैच्छिक संस्था है, जो गत एक दशक से इस दिशा में कार्य कर रही है।

विश्वविद्यालयीय स्तर के शिक्षण का अधिकार प्राप्त करने के लिए स्थानीय 'तृतीयक शिक्षा आयोग' अर्थात Tertiary Education Commission की कई माँगों की पूर्ति करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए सर्वप्रथम माँग है, किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय का वह स्वीकृति-पत्र, जिसके द्वारा यह प्रमाणित किया जाए कि अमुक विश्वविद्यालय अमुक संस्था को तृतीयक स्तर का शिक्षण प्रारंभ करने के लिए अपने विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध कर रहा है अथवा वह परीक्षा लेने और उपाधि प्रदान करने की स्वीकृति दे रहा है। दूसरी माँग है, तृतीयक स्तर के शिक्षण-कार्य के लिए एक उपयुक्त विद्यालय, जिसका एक सुसज्जित पुस्तकालय हो, तृतीय मांग है एक कंप्यूटर लेबोरेटरी की, जिसमें उचित शिक्षण सामग्रियाँ हों, चौथी माँग है विश्वविद्यालीय स्तर के शिक्षण के लिए सहयोगी कर्मचारी गण। सबसे आवश्यक मांग है योग्य व्याख्याता, जो कम से कम एम.ए. तक पढ़ा हो और शिक्षण-क्षेत्र में जिसका दीर्घकाल का अनुभव हो।

इन सबकी पूर्ति में करोड़ों का व्यय होता है। तृतीयक स्तर के शिक्षण के लिए आर्य सभा आवश्यक धन-राशि प्राप्त करने के प्रयास में जुट गई।

आर्यसभा ने विश्वविद्यालयीय स्तर के शिक्षण के लिए एक आधुनिकतम भवन का निर्माण मॉरीशस की राजधानी के पास 'पाई' नामक ग्राम में, राजमार्ग की कुछ दूरी पर किया। इस भवन का नाम रखा गया 'डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज।' इस कॉलिज के लिए आवश्यक शिक्षण सामग्रियाँ जुटाई गईं। एक भरा-पूरा पुस्तकालय भी खोला गया।

सन् 2007 में आर्य सभा ने हिंदी में बी.ए. और एम.ए. की पढ़ाई के लिए 'कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय', हरियाना, भारत से संपर्क स्थापित किया। अंततः एक समझौता तैयार किया गया और दोनों तरफ़ से हस्ताक्षर किए गए।

समझौते के अनुसार 2007 में बी.ए. की पढ़ाई शुरू की गई। बत्तीस छात्र इस कोर्स के लिए भरती हुए। बी.ए. में चार विषय पढ़ने थे – अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य, हिंदी साहित्य, संस्कृत और भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन। चारों विषयों के शिक्षण के लिए चार व्याख्याता नियुक्त किए गए, जिनमें पी.एच.डी. उपाधि से विभूषित दो व्याख्याताओं ने तीन वर्षों तक निःशुल्क अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। हिंदी शिक्षण में आधुनिक शैक्षणिक प्रविधियों का प्रयोग किया गया।

बी.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षाएँ सन् 2008 के मई महीने में हुईं। तीस परीक्षार्थी-परीक्षार्थिनियाँ उत्तीर्ण हुए और बी.ए. द्वितीय वर्ष की पढ़ाई में मनोयोग से लग गए।

सन् 2008 में बी.ए. प्रथम वर्ष में 28 छात्र-छात्राएँ भरती हुए और दस एम.ए. पूर्वार्द्ध में। अगले मई में परीक्षाएँ हुईं। बी.ए. प्रथम वर्ष में पचीस परीक्षार्थी पास हुए। द्वितीय वर्ष में अट्ठाईस और एम.ए. पूर्वार्द्ध में आठ। तृतीय वर्ष की बी.ए. परीक्षा में सत्ताईस परीक्षार्थी सफल हुए और एम.ए. उत्तरार्ध में आठ।

सन् 2010 में पहली बार डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज का दीक्षान्त समारोह (Convocation Ceremony) हुआ। उस अवसर पर सताईस छात्र बी.ए. की डिग्री और आठ एम.ए. की उपाधि से विभूषित हुए।

सन् 2014 के दिसंबर मास में पाँचवा दीक्षान्त समारोह संपन्न हुआ। अब तक डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज में पढ़ने वाले एक सौ पाँच छात्र-छात्राओं ने बी.ए. की डिग्री प्राप्त की है और चालीस एम.ए. की उपाधि से विभूषित हो चुके हैं।

साथ ही इस कॉलिज में डिप्लोमा स्तर की भी पढ़ाई होती है। अब तक पैंतीस छात्र-छात्राएँ हिंदी में डिप्लोमा पा चुके हैं।

गत वर्ष डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज का पुनर्नामकरण किया गया। नया नाम रखा गया – 'ऋषि दयानन्द इंस्टीटयूट'। इस शिक्षा संस्थान में इस समय डिप्लोमा, बी.ए. और एम.ए. की पढ़ाई हो रही है। कोई सवा सौ छात्र-छात्राएँ हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं।

बी.ए. के छात्र पूर्णकालिक अध्ययन करते हैं। एम.ए. और डिप्लोमा की पढ़ाई अंशकालिक होती है। हिंदी के कोई दस व्याख्याता शिक्षण-कार्य में बड़े समर्पित भाव से संलग्न हैं। इस शिक्षण-कार्य के उद्देश्यों में एक है – हिंदी के प्रति छात्रों के हृदयों में अनुराग पैदा करना और दूसरा है, शिक्षण-कार्य के लिए हिंदी के भावी शिक्षक-शिक्षिकाएँ तैयार करना।

गत शती के प्रथम दशक में मॉरीशस में आर्य समाज ने बैठकाओं में हिंदी की पढ़ाई शुरू की थी। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक आते-आते आर्य समाज से जुड़े हिंदी प्रेमियों ने इस हिंदी भाषा को विश्वविद्यालय तक पहुँचा दिया। चूँकि आर्य समाज हिंदी को 'आर्य भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित करता है, इसलिए जब तक मॉरीशस में आर्य समाज की गतिविधियाँ होती रहेंगी तब तक हिंदी भाषा का भविष्य उज्ज्वल बना रहेगा।

संदर्भ

1. जयनारायण राय, मॉरीशस में हिंदी भाषा का संक्षिप्त इतिहास पृ. 55,
   सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, संस्करण 1970
2. वही पृष्ठ 58
3. वही पृष्ठ 64
4. वही पृष्ठ 66
5. आर्योदय, पृ. 7, 26 फरवरी 1999
6. वही पृ. 8, 26 फरवरी 1999